निश्चय-व्यवहार की यथार्थ सन्धि

लेखकः CA. जयेश शेठ, बोरिवली – www.jayeshsheth.com

1. हम लोग निश्चय और व्यवहार की यथायोग्य सन्धि न समझने के कारण से ही अनादि से संसार में रुल रहे हैं। वर्तमान में भी समाज की प्राय: यही स्थिति दिख रही है।

---

2. निश्चय और व्यवहार की यथायोग्य सन्धि का मतलब यह है कि हमें कहीं प्रवास में जाना होता है तब हम सिर्फ़ नक़्शा नहीं देखते। एक बार नक़्शे को समझ लेने के बाद हम प्रवास शुरु कर देते हैं। अगर प्रवास शुरु नहीं किया तो नक़्शा देखने का मक़्सद पूरा नहीं होगा। नक़्शा निश्चय है और प्रवास व्यवहार।

---

3. निश्चय और व्यवहार की यथायोग्य सन्धि का मतलब यह है कि दोनों का यथायोग्य प्रमाण में सेवन करना। किसी एक का भी अधिक मात्रा में सेवन करने से या किसी एक का भी पक्ष रखने से वह निश्चय और व्यवहार की यथायोग्य सन्धि नहीं बन पायेगी।

---

4. निश्चय और व्यवहार की यथायोग्य सन्धि का मतलब यह है कि हम जब सब्ज़ी बनाते हैं तब उसमें नमक उचित मात्रा में ही डालना होता है। अगर सब्ज़ी में नमक कम होगा तो वह फीकी लगेगी और ज़्यादा होगा तो वह खाने लायक ही नहीं रहेगी। नमक निश्चय है और सब्ज़ी व्यवहार। इसलिये समझना यह है कि अपनी साधना में निश्चय और व्यवहार का योग्य संयोजन आवश्यक है।

---

5. निश्चय और व्यवहार के योग्य संयोजन में निश्चय सब्ज़ी में नमक की भाँति योग्य मात्रा में ही होना आवश्यक है। कई लोग सिर्फ़ निश्चय को ही सच्चा मानकर और व्यवहार को झूठा (उपचरित) मानकर अकेले निश्चय का ही सेवन करते रहते हैं। यह इस हुण्डा अवसर्पिणी कलिकाल का ही प्रभाव है कि वे सब्ज़ी को छोड़कर अकेले नमक खाने की ही प्ररूपणा करते हैं। हम सोच भी नहीं सकते हैं कि उनकी क्या दशा होगी। यही इस काल की सबसे भयानक विडम्बना है, सबसे ज़्यादा करुणाजनक स्थिति है।

WWW.JAYESHSHETH.COM

6. वर्तमान में कई लोग अध्यात्म के नाम पर अकेले निश्चय का ही प्रतिपादन करते हैं और उसी से अनेकों की ज़िन्दगियों को बर्बाद करके उन्हें अनन्तकाल तक संसार में रुलाने के लिये ज़िम्मेदार हैं। यही इस काल की सबसे भयानक विडम्बना है, सबसे ज़्यादा करुणाजनक स्थिति है।

---

7. प्रश्न: साधक को सम्यग्दर्शनप्राप्ति हेतु निश्चय और व्यवहार के योग्य संयोजन में कितना निश्चय आवश्यक है?

उत्तर: साधक को सम्यग्दर्शनप्राप्ति हेतु निश्चय सम्यग्दर्शन की व्याख्या समझना अति आवश्यक है। शुद्धात्मा की अनुभूति से ही निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। यही सम्यग्दर्शन का सही और अनुभवसिद्ध मानक है। इसे समझना और ऐसा लक्ष्य तय करना अत्यन्त आवश्यक है।

---

8. यह वर्तमान हुण्डा अवसर्पिणी कलिकाल का ही प्रभाव है कि कई लोग निश्चय सम्यग्दर्शन की व्याख्या का ही विरोध करते हैं और अपने ही मोक्षमार्ग-प्रवेश में बाधा बनते हैं। वे जीवनभर चारित्र की आराधना करके भी मोक्षमार्ग से वंचित रह जाते हैं। यही इस काल की सबसे भयानक विडम्बना है, सबसे ज़्यादा करुणाजनक स्थिति है।

---

9. प्रश्न: साधक को सम्यग्दर्शनप्राप्ति हेतु आत्मस्वरूप की जानकारी कितनी आवश्यक है?

उत्तर: साधक को सम्यग्दर्शनप्राप्ति हेतु निश्चय सम्यग्दर्शन की व्याख्या समझ में आ जाये उतनी आत्मस्वरूप की जानकारी होनी आवश्यक है। दरअसल अगर आत्मा में सम्यग्दर्शन के लिये आवश्यक योग्यता होती है तभी अपनी शुद्धात्मा की अनुभूति होकर निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है। तब उसे स्वभाव का आंशिक अनुभव भी होता है, यह समझना अति आवश्यक है।

---

10. प्रश्न: आप यह क्यों कह रहे हैं कि साधक को सम्यग्दर्शनप्राप्ति हेतु निश्चय सम्यग्दर्शन की व्याख्या समझ में आ जाये उतनी ही आत्मस्वरूप की जानकारी आवश्यक है?

उत्तर: क्योंकि "मैं शुद्धात्मा हूँ", "मैं परम अकर्ता हूँ" इस प्रकार की स्वरूप की जानकारी के बिना तो साधक को सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है परन्तु बिना आवश्यक योग्यता के कभी भी नहीं होता। यह बात एकदम पक्की है कि अधिकारीपन (पात्रता) पाये बिना कभी भी सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता क्योंकि सम्यग्दर्शन बहिरात्मभाव में कभी नहीं होता, उसके लिये आत्मसन्मुखता (पर-विमुखता) प्राप्त करना परम आवश्यक है।

---

11. प्रश्न: आत्मसन्मुखताप्राप्ति हेतु "मैं शुद्धात्मा हूँ", "मैं परम अकर्ता हूँ" इस प्रकार की आत्मस्वरूप की जानकारी की आवश्यकता क्यों नहीं है?

उत्तर: क्योंकि आत्मसन्मुखता परविमुखता से आती है और परविमुखता तो आत्महित सर्वोपरि के सिद्धान्त को आत्मसात करने पर ही आती है! आत्महित सर्वोपरि का सिद्धान्त बिना अपने बाँट और तराज़ू (सफलता के पैमाने/मूल्याङ्कन के मानक) बदले समझ में नहीं आता। उसे समझने लिये बारह भावनाओं का प्रयोगात्मक चिन्तन आवश्यक है न कि आत्मस्वरूप की जानकारी क्योंकि हमने अनेकों बार नौ पूर्वों तक का अध्ययन किया है जिनमें आत्मस्वरूप की जानकारी का भण्डार भरा हुआ है मगर उससे भी हमारा कल्याण नहीं हुआ। बल्कि उससे तो स्वयं शुद्धात्मा होने का भ्रम (निश्चयाभास) भी हो सकता है। इसलिये हम अभी तक संसार में भटक रहे हैं।

---

12. प्रश्न: हमने तो सुना है कि सम्यग्दर्शनप्राप्ति हेतु कल्पनाजनित आत्मस्वरूप में रमने की आवश्यकता है। आप मना क्यों कर रहे हैं?

उत्तर: मना इसलिये कर रहे हैं क्योंकि अज्ञानी नियम से पर्याय का ही वेदन करता है। इसलिये वह जब भी शुद्ध आत्मस्वरूप में रमने का प्रयास करता है तब उसकी कल्पना अपनी पर्याय में ही करेगा। वह अपनी पर्याय को ही अपना त्रिकाली स्वरूप मानकर भ्रमवश उसी का वेदन करने का प्रयास करेगा। जबकि अभी पर्याय तो त्रिकाली स्वरूप जैसी है ही नहीं। इसलिये वह भ्रमवश जो शुद्ध आत्मस्वरूप नहीं

है उस कल्पनाजनित भ्रम में रमने का ही प्रयास करेगा जो कि आत्मप्राप्ति में ज़रा भी कार्यकारी नहीं है। इसे निश्चयाभास कहा जाता है। निश्चयाभास तो उसे भ्रम में ही रखने का काम करेगा जो कि सम्यग्दर्शनप्राप्ति में बहुत बड़ी बाधा है। निश्चयाभास उसके सम्यक् पुरुषार्थ का छेदन कर देगा। निश्चयाभास के रहते परसन्मुखता कभी छूट ही नहीं सकती इसलिये हम अज्ञानी को स्वरूप के कल्पनाजनित भ्रम में रमने को मना कर रहे हैं।

---

13. कई लोग यह सोचकर कि हमारा व्यवहार तो ठीक है अब हमें सिर्फ़ निश्चय को ही ग्रहण करना शेष है, अकेले निश्चय का ही भरपूर सेवन करने लगते हैं। उन्हें पता ही नहीं है कि यदि आत्मानुभूति का लक्ष्य न हो तो व्यवहार भी व्यवहाराभास कहा जाता है। जिसे एकमात्र आत्मप्राप्ति का ही लक्ष्य हो उसके बाँट और तराज़ू (सफलता के पैमाने/मूल्याङ्कन के मानक) अपने आप बदल जाते हैं। मूल्याङ्कन के बाँट और तराज़ू बदलने से साधक को बाहरी जगत का सब कुछ असार और निरर्थक लगने लगता है और वह स्वयमेव अपनी अत्यन्त मूल्यवान आत्मा के सन्मुख होने लगता है। आत्मप्राप्ति की यही रीति है। उसके लिये ढेर सारे निश्चय की कोई आवश्यकता नहीं। हाँ, जिसने निश्चय नय को विपरीत रूप से ग्रहण किया हो उसे सम्यक् निश्चय समझना आवश्यक है।

---

14. सम्यक् निश्चय यानी आत्मस्वरूप का जो वर्णन है वह मैं अभी भी प्रकट (अनुभव) कर सकता हूँ, मगर अभी पर्याय में ही वैसा हूँ - ऐसा नहीं। अगर पहली कक्षा में पढ़नेवाला विद्यार्थी स्वयं को डॉक्टर मानने लगे तो फिर वह आगे पढ़ेगा ही क्यों? वह या तो पढ़ना ही छोड़ देगा या फिर पढ़ाई के प्रति निरुत्साहित हो जायेगा। यही हाल निश्चय को ग़लत ढंग से समझनेवालों का है। वे अपने को शुद्ध, अकर्ता, अभोक्ता, ध्रुव, ज्ञाता-दृष्टा, साक्षी, परमपुरुष, सिद्धसम, मुक्त मानने की बातें करते हैं। ऐसा करके वे लोग निश्चयाभासी बनकर अपनी इस ज़िन्दगी को बर्बाद करके अनन्तकाल तक अपने को संसार में रुलाने (भटकाने) के लिये स्वयं ज़िम्मेदार होते हैं। यही इस काल की सबसे भयानक विडम्बना है, सबसे ज़्यादा करुणाजनक स्थिति है।

---

15. असल में अनेक शास्त्रों में जो भी निश्चयनय का विस्तार है, वह ज्ञानी के कल्लोल (आनन्द) के लिये है। वह विस्तार ज्ञानी को अपनी अनुभूति जाँचने के लिये और सिद्धसम आत्मा में ठहर जाने की प्रेरणा देने के लिये है। अज्ञानी भी उसे पढ़कर ज्ञानी की दशा समझ सकते हैं मगर कई अज्ञानी स्वयं को वैसा मानने की भूल कर बैठते हैं। वे ऐसा ही प्रचार करके बहुतों की ज़िन्दगियाँ बर्बाद कर उन्हें अनन्तकाल तक संसार में रुलाने (भटकाने) के लिये ज़िम्मेदार होते हैं। यही इस काल की सबसे भयानक विडम्बना है, सबसे ज़्यादा करुणाजनक स्थिति है।

---

16. कई लोग निश्चयनय का ही प्रचार-प्रसार करते देखे जाते हैं क्योंकि उन्हें उसके नुक़सान नहीं मालूम। वे स्वयं भी अज्ञानवश इस बात से अनभिज्ञ रहते हैं इसलिये जाने-अनजाने में वे अपने और दूसरों के अनन्तकाल तक पतन के लिये ज़िम्मेदार बनते हैं। यही इस काल की सबसे भयानक विडम्बना है, सबसे ज़्यादा करुणाजनक स्थिति है।

---

17. कई लोग निश्चयनय से स्वयं को शुद्ध मानते हुए अपने राग-द्वेष के लिये स्वयं को ज़िम्मेदार न मानते हुए कर्मों को ही ज़िम्मेदार मानते हैं और स्वछन्दता से जीते हैं। ऐसी ग़लत प्ररूपणा से वे अपने और दूसरों के अनन्तकाल तक पतन के लिये ज़िम्मेदार बनते हैं। यही इस काल की सबसे भयानक विडम्बना है, सबसे ज़्यादा करुणाजनक स्थिति है।

---

18. शुद्ध निश्चयनय से जीव भगवान जैसा है। अगर हम अभी वर्तमान दशा (पर्याय) में ही भ्रमवश स्वयं को भगवान मानने लग जायें तो वह पहली कक्षा के छात्र द्वारा अपने को डॉक्टर मानने जैसा ही होगा। यह बात नहीं समझने से ही यह ग़लतफ़हमी फैल रही है। ऐसी ग़लत प्ररूपणा की वजह से लोग अपने और दूसरों के अनन्तकाल तक पतन के लिये ज़िम्मेदार बनते हैं। यही इस काल की सबसे भयानक विडम्बना है, सबसे ज़्यादा करुणाजनक स्थिति है।

---

19. शुद्ध निश्चयनय भगवान का स्वरूप बताने और हम भी वैसे बन सकते हैं यह बताने के लिये है। हम स्वरूप से अभी वैसे ही हैं कहने का अर्थ है कि हम भी वैसे बन सकते हैं, हममें वह सम्भावना विद्यमान है। शुद्ध निश्चयनय का मक़सद

अज्ञानी को प्रोत्साहित करना, उसका लक्ष्य तय कराना तथा ज्ञानी को उसका बार-बार अनुभव कराना है।

20. कई लोग कहते हैं कि "मैं शुद्धात्मा हूँ", "मैं परम अकर्ता हूँ" इत्यादि स्वरूप की जानकारी को घोंटने (बार-बार पक्का करने) से यानी उसका बार-बार मनन-चिन्तन करने से हमें उसकी प्राप्ति हो सकती है या तो उसकी प्राप्ति आसान बन जाती है। हम कहते हैं कि स्वरूप का मनन-चिन्तन करें या न करें लेकिन आप अगर सम्यग्दर्शन के लिये आवश्यक योग्यता प्राप्त कर लेंगे तो आपके लिये स्वरूप की अनुभूति सरल हो जाती है। स्वरूप के अधिक मनन-चिन्तन से तो कभी-कभी भ्रम यानी निश्चयाभास होने का ख़तरा भी बना रहता है।

---

21. कई लोग हमें पूछते हैं कि मैं वर्तमान में भी स्वरूप से तो में शुद्ध ही हूँ न? तब हम उन्हें बताते हैं कि स्वरूप से तो आप त्रिकाल शुद्ध ही हैं। उनको लगता है कि हम उनकी मान्यता का ही समर्थन कर रहे है क्योंकि उन्हें हमारे कथन का गूढ़ार्थ समझ में नहीं आता। जब हम कहते हैं कि स्वरूप से तो सभी जीव त्रिकाल शुद्ध ही हैं तब हम त्रिकाली ध्रुव (शुद्ध निश्चयनय) की बात कर रहे हैं यानी शुद्ध द्रव्य की बात कर रहे हैं। जिसे वे भ्रम (कल्पना) से वर्तमान में अपनी स्थिति मान लेते हैं, उसे पर्याय में घटाते हैं। उन्हें त्रिकाली ध्रुव का अनुभव तो है नहीं इसलिये वे इस बात को वर्तमान में घटाकर वैसा, अपनी पर्याय में ही भ्रम (कल्पना) से मानने लग जाते हैं। अपने आप को वर्तमान में ही शुद्ध मानने लगते हैं, जो बहुत ही बड़ी भूल है। यही इस काल की सबसे भयानक विडम्बना है, सबसे ज़्यादा करुणाजनक स्थिति है।